लोकतंत्र कितना सफल कितना असफल

पुरी दुनिया का जितना इतिहास पता है। उसके अनुसार चार पॉच शताब्दी पूर्व पूरे विश्व में तानाशाही थी। या तो कोई ताकत के बल पर राजा हो जाता था,अथवा धुर्तता के बल पर। सम्भवतः लोकतंत्र की शुरुवात ब्रिटेन से मानी जाती है,जहॉ राजा का चुनाव करने के लिए जनता की राय ली जाती थी। संभवतः ब्रिटेन में सबसे पहले जीवन पद्धति में लोकतंत्र की शुरुवात हुई। धीरे–धीरे कुछ अन्य देशों में भी लोकतंत्र फलने–फूलने लगा। इसके बाद भी साम्यवादो देशों में लोकतंत्र नही आ पाया और मुस्लिम देशों में भी तानाशाही चलती रही। कुछ देशों में जहॉ अंग्रजो का शासन था,वहॉ लोकतंत्र आया, परन्तु वह लोकतंत्र शासन पद्धति तक ही आया, जीवन पद्धति में नही आया। अमरिका को अपवाद स्वरुप माना जा सकता है, जहॉ अध्यक्षीय प्रणाली के रुप में तानाशाही तथा लोकतंत्र को मिलाकर एक नई पद्धति आयी। भारत भी उन देशों में शामिल है जहॉ अंग्रेजो के जाने के बाद लोकतंत्र तो आया, किन्तु वह जीवन पद्धति में न आकर शासन पद्धति तक सीमित रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत की समाज व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र नही आ पाया तथा शासन व्यवस्था तक आकर रुक गया। ऐसी ही स्थिति दक्षिण एशिया के अनेक देशों की भी है, जहॉ लोकतंत्र सत्ता परिवर्तन तक सोमित रहा, जीवन पद्धति तक नही आ सका।

यदि तानाशाही और लोकतंत्र की तुलना करें तो लोकतंत्र अच्छी व्यवस्था मानी जाती है। किन्तु यदि लोकतंत्र जीवन पद्धति में न आकर शासन पद्धति तक रह जाता है तो लोकतंत्र अव्यवस्था में बदल जाता है। भारत सहित ऐसे सभी देशों में लोकतंत्र अव्यवस्था का आधार बना और जहॉ लम्बें समय तक अव्यवस्था होती है, वहॉ आम जन मानस में तानाशाही के प्रति आकर्षण बढ़ना शुरु हो जाता है। भारत में भी ऐसा ही हुआ क्योंकि भारत में परिवार व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था में लोकतंत्र के लिए कोई प्रयास नही हुआ। परिणाम स्वरुप भारत का लोकतंत्र शासन व्यवस्था तकसोमित रह गया, तथा परिणाम स्वरुप अव्यवस्था हुई,और अव्यवस्था के परिणाम स्वरुप भारत के नागरिकों ने तानाशाही तक का खतरा उठा लिया। मैं स्पष्ट कर दूॅ कि मेरे विचार में नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री देश की सारो समस्याओं का समाधान कर देंगे, तथा वे पूरे भारत के लोगों की सहमति से तानाशाह के रुप में स्थापित हो जायेंगे। हो सकता है कि नरेन्द्र मोदी को इच्छा तानाशाह बनने की न हो,और भारत को जनता ही उन्हें तानाशाह मान ले। यह स्थिति अच्छी नही होते हुए भी हमारी मजबूरी है।

दुनिया में भारत के समान लोकतंत्र जहॉ–जहॉ है ,वहॉ–वहॉ करीब–करीब ऐसी ही स्थिति है। भारतीय लोकतंत्र में खास बात यह होती ह कि शासन समाज को विचार प्रधानता से हटाकर भावना प्रधान बनाता है। जब से भारत में लोकतंत्र आया है, तब से लगातार शासन से जुड़े लोग समाज को भावना प्रधानता की ओर बढ़ाते चले गये। यदि कोई विचार प्रधानता की तरफ बढ़ाना भी चाहा तो उसे दबा दिया गया। क्यांकि भारत जैसे लोकतंत्र में मतदाताओं को भ्रम में डालकर उन्हं प्रसन्न रखना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए राजनेता अथवा शासक सफलतापूर्वक समाज को संतुष्ट या प्रसन्न रखने के लिए दस प्रकार के नाटक करते है।

(1) समाज में आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके,वर्ग विद्वेष फैलाना और उसे वर्ग संघर्ष तक ले जाना।

(2)समस्याओं का ऐसा समाधान खोजना कि उसके समाधान के अंदर ही किसी नई समस्या के पैदा होने का बीज छिपा हो।

(3)आर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक सामाजिक,सामाजिक समस्याओं का आर्थिक प्रशासनिक तथा प्रशासनिक समस्याओं का आर्थिक सामाजिक समाधान खोजना। कभी आर्थिक समस्याओं का आर्थिक,प्रशासनिक समस्याओं का प्रशासनिक तथा सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान नहीं होने देना।

(4) राष्ट्र अथवा धर्म की भावना को उपर उठाना तथा समाज की भावना का नीचे गिराना।

(5) वैचारिक मुद्दो पर बहस को निरुत्साहित करके भावनात्मक मुद्दों पर समाज में बहस को आगे बढ़ाना।

(6) समाज को शासक और शासित में विभाजित करके समाज को अक्षम,अयोग्य, असफल प्रमाणित करना।

(7) समाज के प्रत्येक व्यक्ति में अपराध भाव पैदा हो, इसके लिए अपराध,गैर–कानूनी तथा असामाजिक की परिभाषाओं को गडड–मडड करके प्रभावित करना।

(8)शासन की भूमिका बिल्लियों के बीच,बन्दर की हो इसके लिए ऐसी आर्थिक प्रशासनिक नीतियॉ बनाना,जिससे हर मामलें में भारत का नागरिक शासन का मुखापेक्षी हो जाये।

(9) आर्थिक असमानता वृद्धि के लिए प्रजातांत्रिक तरीके से प्रयास करना अर्थात् जो वस्तुएॅ गरीब लोग ज्यादा उपयोग करें उन पर अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्रत्यक्ष सहायता देना ,दूसरी ओर जो वस्तुएॅ अमीर लोग ज्यादा उपयोग करें उस पर प्रत्यक्ष कर लगाकर अप्रत्यक्ष सहायता देना।

(10)सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों को अधिक महत्व देना।

स्वतंत्रता के बाद भारत में अब तक जो भी सरकारं आयी है, उन सबने इन दस प्रकार के नाटकों का भरपूर उपयोग किया। यदि कोई व्यक्ति इन दस नाटकों के विरुद्ध खड़ा हुआ तो वह राजनेताओं के साथ–साथ समाज से भी तिरस्कृत हुआ, क्योंकि ये दस नाटक ही राजनेताओं की सत्ता प्राप्ति में सहायक होते रहें हैं। ज्यों–ज्यों समय बोतता गया त्यों–त्यों राजनेता अधिक तेजी से इन नाटकों का सहारा लेने लगे तथा समाज का भी भावनात्मक रुप से इन नाटको के प्रति आकर्षण बढ़ा। स्वाभाविक है कि यदि डॉ0 बीमार को मीठी दवाई देने लगे और बीमार को भी उस मिठास में स्वाद आने लगे तो परिणाम तो भयंकर होगा ही। इन परिस्थितियों में भारत की जनता ने लोकतंत्र को तानाशाही की तरफ झ़कने की स्वीकृति दे दी।

लोकतंत्र तानाशाही का विकल्प तो हो सकता है, किन्तु तानाशाही का समाधान नहीं है। तानाशाही का समाधान तो लोकस्वराज्य ही हो सकता था जो गॉधी की सोच थी, जयप्रकाश की भी आंशिक दिशा थी, तथा अन्ना हजारे ने भी हल्का सा बढ़ने का प्रयास किया । लोकस्वराज्य का अर्थ है–समाज की जोवन पद्धति में लोकतंत्र का समावेश। इस कार्य की सबसे पहली इकाई परिवार व्यवस्था है, जहॉ से लोकतंत्र प्रारंभ किया जा सकता है। किन्तु अब तक का इतिहास बताता है कि भारत के शासकों में इसके प्रति कोई रुचि नहीं है, बल्कि भारत के धर्मगुरु भी इस प्रकार के लोकतंत्र के घोर विरोधी हैं। स्पष्ट है कि जब तक परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र नही

आयेगा, तब तक भारत की शासन व्यवस्था में लोकतंत्र नही आ सकता। दूसरी ओर परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र लाने के लिए वर्तमान में कोई और मार्ग नही दिखता है। कहॉ से शुरु किया जाये, किसको इसके लिए तैयार किया जाये, यह समझ में नही आता। परिवार व्यवस्था में जिस तरह तानाशाही प्रणाली अब तक चल रही है वह परिवारों में टूटन पैदा कर रही है। इन परिस्थितियों में संभव है कि अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली वर्तमान व्यवस्था से कुछ अच्छी हो। अध्यक्षीय प्रणाली परिवार व्यवस्था को भी लोकतंत्र और तानाशाही के बीच ला सकती है, तथा इस संशोधित परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था का प्रभाव देश की शासन व्यवस्था पर भी पड़ सकता है। मेरे विचार में अध्यक्षीय प्रणाली लोकस्वराज्य से तो अच्छी नही है किन्तु संसदीय लोकतंत्र से अच्छी है। विशेषकर भारत के लिए जहॉ परिवार व्यवस्था से लेकर समाज व्यवस्था तक केन्द्रीत व्यवस्था के प्रति लोगों में आकर्षण है। मेरे विचार में अध्यक्षीय प्रणाली भारत के लिए एक अच्छी शुरुवात हो सकती है। मैं यह भी समझता हूॅ कि राष्ट्रपतोय प्रणाली के लिए आम सहमति बनाना भी कठिन है और लाभ भी कितना होगा यह पता नही, किन्तु यदि निर्दलीय लोकतंत्र विकसित किया जाये तो यह आसान होगा। वास्तव में संविधान बनाने वालों ने निर्दलीय प्रणाली को अधिक महत्व दिया था। लेकिन साथ में दलगत राजनीति ने जुड़कर निर्दलीय प्रणाली को खत्म कर दिया। राजीव गॉधी ने तो संविधान संशाधन करके निर्दलीय प्रणाली को बिल्कुल समाप्त ही कर दिया। यदि दलीय प्रणाली को त्यागकर निर्दलीय संसद बने तो कुछ अच्छा हो सकता है।चाहे अध्यक्षीय प्रणाली हो अथवा निर्दलीय प्रणाली किन्तु कुछ न कुछ संसदीय प्रणाली में संशोधन या परिर्वतन होना ही चाहिए।

मैं समझता हूॅ कि अध्यक्षीय प्रणाली अथवा निर्दलीय प्रणाली व्यवस्था परिर्वतन नही ह। बल्कि वर्तमान व्यवस्था में थोड़ा सा सुधार मात्र है। व्यवस्था परिर्वतन तो लोकस्वराज्य ही ला सकता है। जिसके लिए अलग से आन्दोलन किया जा रहा है। किन्तु साथ में व्यवस्था में सुधार के लिए भी यदि कुछ होता रहे तो अच्छी बात है।

1 तुषार गॉधी, गांधी जी के पौत्र

विचारः—मेरा विचार है कि गोड्से को सम्मानित करने के विरुद्ध में जो भी लोग है वे गोड्से को अपने प्रचार का माध्यम बना रहें हैं। यदि कोई गोड्से द्वारा की गई,गॉधी हत्या को ठीक मानता है, तो गॉधी के समर्थक बलपूर्वक अथवा कानून से उसका मुंह बंद करने का जो प्रयास कर रहें है वह गलत है। गॉधी हत्या कोई ऐसा विषय नही है जिसे किसी कानून या दबाव की जरुरत हो। लगता है गोड्से के विरोधी तर्क से सामान्य लोगों को संतुष्ट करने में अपने को कमजोर मानते है। ऐसे ही लोग गोड्से के समर्थन को कानून से रोकना चाहते है। यदि गॉधी और गोड्से के नाम पर समाज का ध्रुवीकरण करने का प्रयास किया जा रहा है, तो मेरे विचार मं यह ध्रुवीकरण होना चाहिए। इस ध्रुवीकरण से स्पष्ट हो जायेगा, कि गॉधी और गोड्से में से किसके कार्यो पर समाज की मोहर लगती है। गॉधी विचार को मानने वाले क्यों नहीं , गोड्से समथर्को को सही बात समझाते है। मैं समझता हूॅ कि गॉधी के नाम का लाभ उठाने वाले लोग अपनी गलती के कारण गोड्से के समथर्को की संख्या बढ़ा रहें है।

उत्तरः—मैंने कुछ वर्ष पहले एक लेख लिखा था, जिसमें मैंने पंडित नेहरु और गोड्से के कार्यो और नीयत की समोक्षा की थी। मैंने लिखा था कि गोड्से का कार्य गलत था, नीयत नहीं। पंडित नेहरु का कार्य ठीक था, नीयत नही। पंडित नेहरु अंत तक प्रधानमंत्री बनने के प्रयास में लगे रहे। गॉधी के जीवित रहते ही जब स्वतंत्रता मिलने का समय आया तो गॉधी को किनारे करके भी नेहरु ने वायसराय से अलग चर्चा शुरु कर दी। नेहरु कभी गॉधी के विचारों से सहमत नही रह और स्वार्थवश गॉधी की बात मानते रहे। गोड्से देशभक्त था किन्तु वह मोटिवेटेड था। अर्थात वह ऐसे विचारों से प्रभावित हो गया था, जिन्हें न देश की चिन्ता थी न समाज की। एसे लोग तो केवल साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करके सत्ता में आना चाहते थे। मैंने एक उदाहरण लिखा था कि यदि मेरे गले में सॉप या छिपकिली बैठी हुई है और मेरा लड़का मेरे विरोधी के प्रभाव में आकर अच्छी नीयत से सॉप या छिपकली की हत्या करने के लिए मेरी गर्दन कॉट दे, तो मैं अपने लड़के को दोष दूॅ या उसको प्रभावित करने वाले मॉटिवेटर को? मैं अच्छी तरह समझता हूॅ कि यदि गोड्से गॉधी के प्रभाव में आया होता तो वह नेहरु की अपेक्षा अधिक अच्छा प्रधानमंत्रो हो सकता था। मेरे इस कथन को कुछ गॉधीवादियों ने बुरा माना और इस बात की शिकायत मेरे पथ प्रदशक ठाकुरदास जी बंग से की,तो ठाकुर दास जी ने भी पूरा लेख पढ़कर वैसे ही विचार व्यक्त किये जैसे मेरे थे या तुषार गॉधी के। स्वार्थी तत्वों द्वारा की गई प्रशंसा निष्पक्ष निःस्वार्थ आलोचना की अपेक्षा अधिक खतरनाक होती है।

(2)नरेन्द्र सिंह, कछवाहा,राजसमंद, ज्ञानतत्व–52735

प्रश्नः– ज्ञान तत्व क्र0 301 प्राप्त हुआ। पढा। इस पाक्षिक के विचारों से सहमत होना मैं आवश्यक नही समझता। किन्तु इसकी एक विशेषता मुझे अधिक प्रभावित करती है कि इसकी सामग्री विचारोत्तेजक होती है। प्रतिकिया किये बिना रहा नहीं जा सकता।

हम सभी राजनीतिज्ञों को अपनी समस्त सामाजिक राजनोतिक आर्थिक सांस्कृतिक समस्याओं की जड मान कर तथा उनकी एक राय होकर निन्दा करते रहते हैं। भारत की आजादी तथा उसके बाद हम राजनेताओं पर निरन्तर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हुए अपनी प्रतिकिया मीडिया टी०वी आदि माध्यमों से व्यक्त करते हैं। अब फेसबुक टवीटर आदि भी इसमें सम्मिलित ही नही हो गये है बल्कि सरकार बदलने के हथियारों के तौर पर भी काम आने लगे हैं।

मेरे कुछ प्रश्न हैं जिनके उत्तर की मुझे तलाश रहती है। ज्ञान–तत्व के माध्यम से उत्तर आप दें या अन्य कोई विद्वान–विचारक दें,तो अच्छा रहेगा।

मेरा पहला प्रश्न है कि क्या वास्तव में हमारी समस्त समस्याओं के लिए एक मात्र दोषी ये राजनेता ही है? अधिकॉशतः हम अपने दृष्टिकोण से अपना पक्ष व्यक्त करते हैं, जिसमें राजनेताओं के पक्ष का प्राय अभाव होता है। एक कहावत है कि जब तक आप स्वयं जूते में अपना पैर नही रखेगें तब तक आप कैसे जान सकते है कि जूता कहॉ काट रहा है?राजनीतिज्ञ हमारे हमारे लिए विलेन समान है। जो हमारे हितों की अनदेखी करके केवल अपने हित साधते है।

क्या यह एक गलत वैचारिक परम्परा नहीं है?

वस्तुत मेरी दृष्टि से राजनेता तो अपने निजी स्वार्थ साधने के दुष्कर्मो के लिए दोषी है ही साथ ही उनसे अधिक देश के नागरिक दोषी है जो वर्तमान व्यवस्था जैसी भी है उसको राजनेताओं के माथे मढ कर शान्त हो जाते हैं, अथवा उनके कृत्यों को दर्शक की भॉति देखते है मानो टी०वी देख रहे हों। जबकि हकीकत तो यह है कि नागरिक ही स्वयं अपने अधिकार राजनेता को समर्पित करता है। अब यह राजनेता पर निर्भर करता है कि वह उस अधिकार का उपयोग निजी हित में करता है अथवा उसे अधिकार प्रदान करने वाले नागरिक के हित मे उसका उपयोग करता ह। जबकि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि राजनेता वोट लेने के उपरान्त वोटर (मतदाता)के प्रति पूर्ण रूप से जवाबदेह हो। यदि उसमे कभी–भी किसी भी समय कोई कमी प्रकट हो तथा वह प्रामाणित हो जाय तो मतदाता को अपना वोट वापस लेकर नये जनप्रतिनिधि को चुनने का पूरा अधिकार क्यो नहीं होना चाहिए?

दूसरा मेरा यह प्रश्न है कि देश का नागरिक मजबूरी मे या स्वैच्छा से राजनेता को जो अधिकार देता है यदि राजनेता उसका दुरूपयोग करता है तो प्रथम तो उसे पता ही नहीं चलता है कि नागरिक द्वारा दिए अधिकारो का दुरूपयोग कर रहा है। यदि पता चल भी जाता है तो अधिकार –प्रदाता नागरिक को तो कोई भूमिका ही नही रहती। नागरिक मात्र देखता है कि राजनेता ने अपने अधिकार का दुरूपयोग कर मूलत नागरिक को ही क्षति पहुॅचाई है, जिसका नागरिक कुछ नही करता या नहीं कर सकता है।ऐसी स्थिति में क्या व्यवस्था में बदलाव करके निर्वाचित राजनेता द्वारा अधिकार का दुरूपयोग करने पर नागरिक अपने द्वारा दिये गए अधिकार वापस नहीं ले सकता ?राजनेता द्वारा अधिकार का दुरूपयोग करने पर उसे तुरन्त हटा कर अन्य अधिक योग्य राजनेता को नागरिक अपने अधिकार समर्पित क्यो नहीं करता या कर सकता है?ठीक उसी प्रकार जैसे सरकार अपने द्वारा नियुक्त अधिकारी–कर्मचारी के द्वारा अपने पद का दुरूपयोग करने पर उसे अपने पद से अलग कर देती है।प्रश्न यह है कि वर्तमान व्यवस्था मे ऐसा परिर्वतन कौन लायगा और क्यो नहीं लाया जा सकता है?जैसे चल रहा है उसको लाचारी के साथ भुगतना और झैलना नागरिक के लिए क्यो आवश्यक है?

अन्तिम प्रश्न यह है कि देश की आजादी से अब तक जो स्थापित चेहरे राजनीति चला रहे है उनका क्या देश व प्रदेशो का शासन बपौतो है या राजा–महराजाओं की तरह उनका प्रधान मंत्री, मुख्य मंत्री, मंत्री,सासंद, विधायक, आदि बनना उनका एकाधिकार है?अथवा यह व्यवस्था नागरिकों की अपनी कमजोरी या राजनीति के प्रति उपेक्षा का परिणाम है?

मुझे सर्वाधिक जो बात खटकती है वह यह है कि हम मात्र चर्चाऐं करते है,वाद्–विवाद करते हैं,कभी सोनिया गॉधी तो कभी नरेन्द्र मोदी या अन्य राजनेताओं के पक्षधर बनते ह तो कभी उनका विरोध करके अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेते हैं। हम बरसो तक इन पेशेवर राजनेताओ को उनके मनमाने तथा लोक विरोधी व्यवहार के बावजूद उनको सहन करते हुए उनको वोट देकर अपने अधिकार देते रहते है। फिर उनके कारनामों पर "अरण्य –रूदन"करते है।

क्या हम कभी इस सडी–गली राजनैतिक व्यवस्था को बदलने पर विचार करेगं?क्या "लोकतन्त्र"में स्थापित राजनेताओ का पेशेवर होना ही उसकी पहचान है। फिर राजनैतिक दलो तथा शासनो मे युवा–शक्ति,नई ऊर्जा, नये विचार कैसे आ पायेगें। जब तक परिवारवाद, वंशवाद ,जातिवाद, तथा वोट–बैकं की राजनीति से शासन चलाया जाता रहेगा?क्या हम राजनैतिक दलो और उनके स्थापित नेताओ के एकाधिकार को समाप्त करके देश की युवा –शक्ति , नई ऊर्जा, नये विचार ,से अनुप्रमाणित करने पर चिन्तन करेगें?

देश के आम आदमी को अब यह राजनैतिक लाचारी और अधिक सहन क्यो करनी चाहिए ?क्या व्यवस्था के ठोस परिवर्तन पर न केवल चिन्तन वरन् क्रियान्वन उतना ही आवश्यक नहीं है, जितना कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समय थी ?

राजनैतिक स्वतन्त्रता तो विदेशी दासता और सामाज्य–वाद के शिकंजे से मुक्त होने की प्रक्रिया थी। किन्तु क्या हम अपनी व्यवस्था स्वयं ठीक से समुचित लोक–कल्यान के साथ करके संतुष्ट है? यदि नही तो क्या उसमेंसुधार और बदलाव की अपेक्षा हमें उन दिन–प्रतिदिन राजकीय अधिकारों, धन, संसाधनों द्वारा शक्तिशाली हो रहे राजनेताओं से करनी चाहिए? जिनके राजनैतिक दल कॉरपोरेट सिस्टम का संरक्षण करते–करते स्वयं ही कॉरपोरेट्स –स्वरूप हो रहे है। अब उन्हे "जनहित" का नाम तो वोट लेने तथा "जनहित" के नाम पर अपने व्यक्तिगत अथवा अपने राजनैतिक –दलों के स्वार्थ साधने मात्र के लिए चाहिए । उनका सौभाग्य तो यह है कि हम इस देश के प्रबुद्ध नागरिक उनके सद्कर्मो और दुष्कर्मो की वाहवाही करने मे ही अपना गौरव मानते है। जबकि अच्छे या बुरे परिणामो के लिए हम (नागरिक)भी उतने ही जिम्मेदार है जितने कि हमारे द्वारा शासन करने के लिए अधिकृत राजनेता।क्या यह

प्रवृति इस देश के हर क्षेत्र में उपेक्षित, शोषित ,प्रताडित व पीडित आम आदमी की दृष्टि से उचित है, जिसकी किसी को परवाह नहीं है?

मेरे इन प्रश्नां का मुझे न केवल समाधान चाहिए, वरन् समाधान की क्रियान्विति के प्रति "लोक–चेतना "भी चाहिए, जो मुझे कहीं दृष्टिगत नहीं होती।

उत्तरः–मेरे विचार में चरित्र पतन अथवा अन्य गड़बड़ियों के लिए ये वर्तमान राजनेता दोषी नही है और न ही भारत के मतदाता दोषी है। वास्तव में सारा दोष पंडित नेहरु और भीमराव अम्बेडकर तथा जिन्होने संविधान संशोधन का अधिकार उन्ही राजनेताओं को दे दिया, जा संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है, उनका है। दूध की निगरानी के लिए बिल्ली को पहरेदार बनाकर यदि हम दूध की सुरक्षा चाहते है तो कहीं हमारी नीयत खराब है। भारत की राजनैतिक व्यवस्था में हम जो अधिकार देते है वे हमारी अमानत है जीतने वाले नेता के अधिकार नहीं जबकि वे इसे अपना अधिकार मानते है। यहॉ तक कि भारत के किसी भी नागरिक को कोई भी चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं है बल्कि कुछ मतदाताओं के प्रस्ताव पर चुनाव लड़ने की स्वीकृति अस्वीकृति देने का अधिकार है। हमारा बडे से बडा नेता भी ऐसा समझता है कि वोट हमारी अमानत नहीं बल्कि उसका अधिकार है । स्पष्ट है कि वर्तमान सभी समस्याओं का समाधान राजनेताओं के चरित्र पतन में अथवा नागरिकों की गलती में न खोज कर संविधान की उस धारा पर नियंत्रण के प्रयास से खोजा जाना चाहिए जो धारा संसद को ही संविधान संशोधन का असीम अधिकार देती हैं। यह एक मात्र समस्या है, जिसका समाधान सभी समस्याओं की शुरुवात के रुप में हो सकता है। आप विचार करियें कि यदि हमारी बन्दूक किसी शर्त के अन्तगंत हमार पहरेदार के पास चली गई, और पहरेदार उस बन्दूक का उपयोग हमें गुलाम बनाकर रखने के लिए कर रहा है तो समाधान उस पहरेदार को प्रवचन देने से नही होगा बल्कि समाधान तो यह होगा कि हम किसी तरह वह अपनी बन्दूक अपने नियंत्रण में कर लें। इस बात का विशेष महत्व नही है कि वह बन्दुक हमने उनको क्यों दी ? क्योंकि बन्दुक उसको देने में हमारी कोई भूमिका नही थी। बन्दुक तो उसे अम्बेडकर और नेहरु ने मिलकर दी है। और वह बन्दूकधारी अपने आगे आने वाली पीडियों को भी वह बन्दूक दुरुपयोग करने के लिए सौंप रहा है। स्पष्ट है कि हम विदेशियों से स्वतंत्र होने के बाद भी राजनैतिक विरादरी के गुलामों के समान हं, जिन्हें वर्तमान संविधान पर मोहर लगाने के लिए हर पॉच वर्ष में चुनाव का नाटक किया जाता है। चुनाव का अर्थ है वर्तमान गुलाम संविधान के समर्थन की मुहर लगवाना जो पूरी तरह लोकतांत्रिक तरीके से हमारे विरुद्ध षड़यंत्र है। यह कैसी स्वतंत्रता है जिसमें भारत का मतदाता संसद के अधिकारों की कोई सीमा कभी न तय कर सकता है न ही उन अधिकारों में कभी भी किसी भी परिस्थिति में किसी भी तरीके से कोई कटौती कर सकता है किन्तु संसद हमारे अधिकारों को कभी भी किसी भी सीमा तक किसी भी तरीके से सीमित कर सकती है कटौती कर सकती है, शून्यवत् कर सकती हैं। मतदाता एक प्रकार से अपनी गुलामी पर मुहर लगाने के अलावा कुछ और नहीं करता। जब तक संविधान संसद की गुलामी से मुक्त न हो जावें तब तक लोकतंत्र संविधान अथवा अन्य सारे प्रयत्न हमारी गुलामी के हथकंडे ही माने जाने चाहिए। अब तो मोदी सरकार ऐसी मुहर लगाने को अनिवार्य भी करने की सोच रही है।मेरा आपसे निवेदन है कि हम अपने सारे प्रयास लोकसंसद के समर्थन में लगावें,जिससे हमारा भगवान रुपी संविधान राजनेताओं की संसद रुपी जेल खाने से मुक्त हो सके।

(3)चितरंजन भारती,असम,ज्ञानतत्व–115

प्रश्नः– ज्ञानतत्व के अंक 301 में श्री रमेश कुमार धर्मजीत मिश्र का पत्र पढकर हतप्रभ रह गया। भारतवर्ष के कटु यथार्थो का जीता जागता नमूना है यह सामंतवाद। इस देश में अनेक जगहों पर, अनेक मत मतान्तरों के आधार पर समानांतर सरकारें चल रही हैं, ऐसा अकसर ही पढ़ने –सुनने को मिलता है। मगर ठीक देश के मध्य में ही मध्यकालीन सामंतवाद अब भी अपना आक्टोपसी पंजा कसे हुए है, जान कर आश्चर्य हुआ। मेरे ख्याल से इस सामंतवाद का खात्मा शिक्षा के विस्तार से ही संभव है। चूँकि सामंतवादी तत्व ऐसा भी नहीं होने देना चाहेंगे,तो वहॉ के लोगों को ही इसके लिए दृढ़ता दिखानी होगी। यहॉ दिक्कत की बात यह है कि इस तथाकथित सामंतवाद को समाप्त करने की चाहना रखने वाले नक्सलवादी भी जन–सामान्य में शिक्षा का विस्तार नहीं होने देना चाहते । ऐसे में सरकार अथवा व्यवस्था की मुसीबत बढ़ जाती है। आपने अपराध,उग्रवाद तथा आतंवाद का फर्क समझाया।

उत्तरः– आपने धर्मजीत मिश्र का पत्र पढ़कर आश्चर्य किया, कि वर्तमान भारत में भी एसा सामन्तवाद है। मैं समझता हूँ कि यह कोई अकेला स्थान नही है जहॉ इस प्रकार की गुलामी दिखती हो। आप समझते है कि शिक्षा से इस स्थिति का समाधान संभव है। तो आप भ्रम में है ऐसे सामंतवाद की मद्द करन में शिक्षित लोग ज्यादा आगे रहते है। आप निश्चित जानियें कि ऐसे अत्याचारी लोगो पर किसी न किसी राजनैतिक दल का वरदहस्त होता है। अतः इस प्रवृत्ति का समाधान सिर्फ शिक्षा से संभव नही है बल्कि इसके समाधान के लिए तो राजनेताओं के प्रभाव को कम करना पड़ेगा। मं आपसे सहमत हूँ कि नक्सलवादी भी ऐसे ही मिलते जुलते अत्याचार करते है। किन्तु नक्सलवादी शिक्षा के विरुद्ध है, ऐसा नही है। नक्सलवादियां ने जहॉ सरकार बना ली है, वहॉ भी वे अपने क्षेत्र में स्कूल चलाते है। विवाद शिक्षा का नही है बल्कि विवाद इस बात पर है कि नक्सलवादियों के क्षेत्र में शिक्षा सरकार देगी कि नक्सलवादी।

(4)श्री नारायण सिंह साहू,राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त पूर्व शिक्षक, बालोद, छत्तीसगढ़,ज्ञानतत्व 13548

प्रश्न–आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपकी भावनाओं से अवगत हुआ। विगत वर्ष से आपके द्वारा सम्पादित ज्ञान तत्व पाक्षिक मुझे प्राप्त हो रहा है। पत्रिका मे जहॉ तक मैने अनुभव किया है कि राजनैतिक विषय की बहुलता रहती है जो मुझे कम पसंद है। मैं धार्मिक व्यक्ति हूँ, राजनैतिक झमेलो से कोसों दूर रहकर व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण की ओर अधिक ध्यान रखता हूँ। पूज्य गुरूदेव पं0 श्री राम शर्मा आचार्य जी के विचारों से अभिभूत हूँ। आपने सुझाव भेजने की बात इस नाचीज से किया है, मैं शायद इस दिशा मे सक्ष्म नही हूँ। मेरा निवेदन सिर्फ इतना है कि आपने हर पत्रिका मं सूचना के अन्तर्गत संसद को एक जेल खाना और संविधान को भगवान माना है और जेलखाने मे भगवान रुपी संविधान को बंद लिखते है। बात मुझे जमती नही है।जेलखाना और भगवान मेरे विचार से दोनो अलग चीज है।भगवान को मुक्त कराने की सूचना आप करते हैं। कृपया इसमं आंशिक सुधार हो तो ज्यादा अच्छा होता । आज की दशा और दिशा ही कुछ ऐसी है।किन –किन पर ऊँगली उठाये।अतएव बहत ही विनम्रता पूर्वक अनुरोध है कि पत्रिका मे व्यक्ति निर्माण एंड चरित्र निर्माण परक कुछ बाते की समावेषित हों।

उत्तरः– मैं श्री राम जी शर्मा के प्रयत्नों के विरुद्ध नहीं। उनकी नीयत ठीक थी नीति गलत।यदि कोई शत्रु किसी भी प्रकार समझने से न माने तब उसके साथ बलप्रयोग करना पड़ता है। न समझाने का प्रयास गलत है न ही बलप्रयोग। यदि हम बीमार हैं तो बीमार को टानिक देना गलत नहीं किन्तु बीमार की बीमारी ठीक करने के लिये टानिक के पूर्व या टानिक के साथ दवा देना भी जरुरी है तो दवा भी देना आवश्यक कार्य है। श्री राम जी शर्मा सरीखे महापुरुषों ने समाज सुधार के जो भी प्रयास किये उनके परिणाम क्या हुए? मैं मानता हूँ कि यदि श्री राम शर्मा सरीखे महापुरुष नहीं होते तो समाज में और भी अधिक गिरावट आती किन्तु सामाजिक पतन की गति को कम करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि सामाजिक पतन की गति को शून्य करना या उल्टा करना ही सफलता मानी जायेगी जो शर्मा जी भी नहीं कर सकें। उनके बाद के गायत्री परिवार से तो उम्मीद ही व्यर्थ है। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि शर्मा जी ने बीमारी की दवा न शुरु करके टानिक दिया जिसका लाभ आंशिक होने के कारण कुल मिलाकर बीमारी बढ़ती गई।

जो लोग सामाजिक समस्याओं के समाधान की बात करते हैं उन्हें करने दीजिये। भूसा कूटने से भूसा तो महीन होगा किन्तु दाना नहीं निकलेगा क्योंकि दाना तो राजनीति की भेंट चढ़ गया और आप लोग भूसा कूट रहे हैं। राजनैतिक पतन एक बीमारी है जिसका भारी प्रभाव समाज पर पड़ रहा है।उस बीमारी के ठीक किए बिना सामाजिक पतन नही रूक सकता।यह बोमारी बहुत पुरानी हो गई है जो पण्डित नेहरू अम्बेडकर ने हमारे उपर थोप दी है और आज तक हम उसे ढो रहे हैं। संविधान को कैद करके संसद एक ओर तो उसमे मनमाना संशोधन कर रही है तो दूसरी ओर संविधान को भगवान कह कर हमे उसकी पूजा करने के लिये भी प्रेरित कर रही है। यदि कोई बन्दूक सीने पर रखकर हमसे कोई गुलामी का समझौता कर ले तो ऐसा समझौता तब तक मान्य नहीं जब तक हम स्वतंत्र न हों।हमारा गुलाम संविधान गुलामी काल में जो भी कहता है वह हमारे लिये आदर्श नहीं। मेरा आपसे निवेदन है कि आप गुलामी के विरूद्ध यदि संघर्ष नही करना चाहते तो न करें किन्तु हमें आप ऐसी गुलामी स्वीकार करने की सलाह न दे।

(5)–श्री सत्यपाल शर्मा बरेली,उत्तर प्रदेश,ज्ञानतत्व 6894

प्रश्नः–विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने श्रीमदभागवद गीता को राष्टीय ग्रन्थ होने की बात कही, जिस पर देश के पाखंडी नेताओ ने हाय तौबा मचाया और संसद के अंदर तथा बाहर घोर विरोध किया जो निंदनीय है। यदि अन्य धर्मो क ग्रन्थ पर ऐसा बयान आता तो ये भ्रष्ट नेता हाय तौबा न मचाते । यह सत्य है कि हिन्दू शान्ति प्रिय और असंगठित है, हिन्दू गुलामी सह सकता है किन्तु गुलाम बना नही सकता । भारत के सब मुसलमान राष्ट भक्त है यह गलत है। अधिकांश राष्ट भक्त हैं लेकिन अल्प संख्या में राष्ट द्रोही भी है। गीता ऐसा ग्रन्थ है जिसमे संपूर्ण मानव जाति के लिए संदेश निहित है। गीता धर्म जाति से ऊपर उठकर मानव के जीवन –दर्शन को स्पष्ट करता है। गीता मे भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का प्राण समाया है। इस ग्रन्थ को जितनी वार पढा जाए उतनी वार कुछ नया वोध मिलता है, नईप्रेरणा मिलती है।गीता दिव्य वाणी है इसमे सभी उपनिषदो व वेदो का सार है ।

श्रीमती सुषमा स्वराज का गीता को राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित करने का विचार सही है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को गीता को राष्टोय ग्रन्थ घोषित का प्रस्ताव मंत्री मंडल से पास करके पाखंडियो को करारा जवाब देना चाहिए।इस सम्बंध मे आपके ओजस्वी विचारो का स्वागत है।

उत्तर—मैने बचपन मे गीता कई बार पढी।मेरा सोलह वर्ष की उम्र में विवाह हुआ। मेरी पत्नी पढी लिखी नही थी किन्तु उसके मन मे गीता के प्रति अपार श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन प्रातः गीता पढती थी भले हो वह पढ कुछ न सके । उसे देखकर मै भी कभी गीता पढने लगा। मै आज यह कहने की स्थिति मे हूॅ कि मै आज जो कुछ भी हूॅ उसमे गीता के ज्ञान का बहत प्रभाव है।बाद के जीवन मे मैने अपने हाई स्कूल के प्राचार्य से घर मे अठारह दिन तक गीता प्रवचन सुना। मै गीता के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखने लगा और मेरे माध्यम से मेरी पत्नी को गीता का ज्ञान हुआ।

धर्म के दो अर्थ है। (1)गुण प्रधान (2)पहचान प्रधान । गुण प्रधान अर्थ कर्तव्य से जुडा हैऔर पहचान प्रधान पूजा पद्धति से। सुषमा स्वराज ने गीता को राष्टीय धर्म ग्रन्थ घोषित करने की बात कही जिसका आप समर्थन कर रहे है। मै नही समझमा की गीता को किसी राज्याश्रय की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता के तत्काल बाद ही गांधी को राज्याश्रय मिला। यदि आज ठीक से विचार करे तो भारत में गांधी विचार के समर्थको की अपक्षा गोडसे के विचारो का अनुसरण करने वालो की संख्या कई गुना ज्यादा है। मै आश्वस्त हूॅ कि यदि गोडसे के विचारो को दबाने और गांधी के विचारो को उभारने मे राज्य की भूमिका नही होती तो संभवतः अधिक मात्रा मे गांधी का समर्थन दिखता । गांधी संमर्थन के नाम पर सरकारी धन का दुरूपयोग करने वाले गांधी के कार्य को उपर नही जाने देगें। मुझे डर है कि गीता के नाम पर भो कही सरकारी धन लूटने वाले गीता की भी दुर्गति न कर दे।

यदि पूरी दुनिया का सर्वे करे तो पूरी दुनिया के धर्म ग्रन्थों में दूसरे धर्म वालो से सम्मान पाने वालो पहली पुस्तक गीता है । दुनिया का कोई भी धर्मावलम्बी अपने धर्म ग्रन्थ के बाद दूसरे नम्बर पर गीता को मानता है। यह सम्मान तो तब है जब गीता को कोई राज्याश्रय नहीं। मै जानता हूॅ कि राज्याश्रय पोषित संख्याओ की विश्वसनीयता घट रही है। आज भी मैं प्रतिदिन टी0वी0 मे समाचार सुनता हूॅ किन्तु भूलकर भी सरकारी चैनल नहीं लगाता जबकि मै जानता हूॅ कि सरकारी टी0वी0 में भी अच्छे स्तर के कार्यक्रम होते हैं किन्तु स्वतंत्र समाचार राज्यआश्रित समाचारों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।

गीता को राष्ट की सीमाओ में बाधना ठीक नहीं। मेरे विचार से गीता मे समाज शास्त्र ज्यादा है और धर्मशास्त्र कम। स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः मे धर्म का वह अर्थ नही हो जो आप कर रहे है।वहॉ धर्म का स्पष्ट अर्थ व्यक्तिगत कर्म से जुडा हुआ है। अब धर्म के पहचान प्रधान अर्थ को मानने वाले गीता की दुर्गति कर देगें इस खतरे से मै चिन्त्ति हूॅ। मेरा मत है कि गीता को राज्य के हस्तक्षेप से दूर ही रखिये। गीता में स्वयं इतनी शक्ति है कि वह राष्ट्र की सीमाओं को तोड़कर समाज में स्वीकृत हो सकती है।

(6)— नरेन्द्र सिंह बंनबोई, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश, ज्ञानतत्व—8438

विचार—आपने ज्ञान तत्व में न्यायव्यवस्था पर विस्तृत विचार दिये है।बहुत संतुलित है।फिर भी कुछ प्रश्न उठते है, जिनका समाधान होना चाहिए।

(1)क्या विधि का निर्माण करके राज्य समाज के सामने शक्ति का प्रदशंन करता है?

(2)किसी संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज किस प्रकार न्याय प्राप्त कर सकता है?

(3)संवैधानिक व्यवस्था के अन्तगत निर्वाचित प्रतिनिधि ही समाज के लिए न्याय को परिभाषित कर सकते है, अथवा समाज भी उसमे हस्तक्षेप कर सकता है?

मेरे विचार मे न्याय का प्राकृतिक अर्थ यह है कि जीवन की प्रकृति प्रदत्त स्वतंत्रता मे किसी का भी किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। दूसरी ओर न्याय का भौतिक पक्ष यह है कि किन्ही दो या उससे अधिक इकाईयो के बीच टकराव की स्थिति मे किसी व्यवस्थागत प्रक्रियॉ द्वारा उचित एवं अनुचित का निर्णय किया जाता है । सच्चाई यह है कि प्राकृतिक न्याय को मर्यादा के बिना समाज सुचारू रूप से नही चल सकता और भौतिक न्याय के बिना प्राकृतिक न्याय पर आकमण करने वालो को रोका नही जा सकता । किसी काल में राजा न्याय प्राप्ति का माध्यम होता था तो कभी पंच प्रक्रिया अथवा पंचायतो के माध्यम से न्याय प्राप्त किया जाता था। कभी कभी राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी भी न्याय करता था। जब दो अलग अलग ईकाईयो के बीच राजा न्याय करता था, तो उसमे पक्षपात की कम सम्भावना होती थी किन्तु जब राज्य के हितो के विरूद्ध किसी के पक्ष मे न्याय करना होता था तो उसमे राजा अपनी तरफ अधिक झुक जाता था। पंचायती न्याय समझौते के अतिरिक्त कुछ नही होती थी । इन्ही परिस्थितियों मे समाज की लोकतंत्रोय व्यवस्था के अन्तर्गत न्याय का आधार तैयार किया गया । यह प्रणाली किसी को भी मनमाना न्याय करने की छूट नही देती बल्कि वादी प्रतिवादी को किसी नियमबद्ध प्रकिया द्वारा सहमत करते हुए न्याय प्राप्त कराती है। प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी संवैधानिक व्यवस्था के अन्तगत निर्वाचित प्रतिनिधि न्याय को परिभाषित कर सकते है? मै यह स्पष्ट कर दूॅ कि समाज स्वयं में न कोई जैविक इकाई है, और न ही विधिक । समाज तो व्यक्ति के समूह की आकृति का नाम है,जो जीवन के श्रृजन और विकास की परस्पर आवश्यकताओ के आधार पर विकसित होता है। लोकतंत्र में व्यवस्था करन के लिए समाज जिस इकाई का गठन करता है उसे वास्तव मे व्यवस्थापक तथा सामान्यतया सरकार कहा जाता है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था मे तीन अलग अलग इकाईयॉ न्यायपालिका कार्यपालिका एवं विधायिका के नाम से होती है। सिद्धांतः तीनो इकाईयां एक सीमा तक स्वतंत्र भी होती है, तथा एक दूसरे की पूरक भी । इन तीनो को कभी एक दूसरे की सीमाओ मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। किन्तु यह देखा जा सकता है कि न्यायपालिका तथा विधायिका जन आकांक्षाओ अथवा लोकहित का बहाना बनाकर दूसरी इकाईयो की सीमाओ में हस्तक्षेप करते है। विधायिका द्वारा भारत के संविधान में बावनवां संविधान संशोधन करके दसवी अनुसूची का जोंडना भी लोकतंत्र की मर्यादा का उलंघन था। क्या विधायिका को यह अधिकार हो सकता है कि लोकतंत्र की मर्यादा के विरूद्ध जाकर संवैधानिक जनप्रतिनिधियो पर अंकुश लगाने के लिए ऐसी विधि का निमाण करे जिससे जनप्रतिनिधि राजनैतिक पार्टियो की निरंकुश निष्ठा के प्रति बंधे रहने के लिए बाध्य हो जाये। जब जनप्रतिनिधि जनता के द्वारा निर्वाचित होता है, तो उस निर्वाचित प्रतिनिधि के ऊपर कोईसमूह उसे विधि संगत तरीके से अपने अनुसार चलन के लिए बाध्य कैसे कर सकता है। यदि ऐसा होता है तो वास्तव में ऐसा लोकतंत्र किसी समूह की तानाशाही कहा जाना चाहिए। यदि विधायिका ऐसी विधियों का निर्माण करती है, और न्यायपालिका उसकी समीक्षा नही करती है, समाज को चाहिए कि वह व्यवस्था के उस ढॉचे पर फिर से विचार करे । लोकतंत्र में समाज की सवोच्चता को कोई भी इकाई चुनौतो नही दे सकती इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए ।

उतरः—यदि व्यवस्थापक अपने को राज्य अथवा शासक कहता और समझता है तो विधि निर्माण में कुछ व्यवस्था का भाव रहता है और कुछ शक्ति प्रदर्शन का । यह अन्तर व्यक्ति विशेष के आधार पर कम ज्यादा होता रहता है। किन्तु यदि आप स्वयं को व्यवस्थापक कहते तथा समझते हैं तो विधि निर्माण मे शक्ति प्रदर्शन शून्य होता है।

यदि लोक स्वराज्य हो तो समाज किसी से न्याय प्राप्त करने के लिये मजबूर नही है बल्कि वह या तो स्वयं न्याय देता है अथवा समाज न्याय देने का दायित्व किसी इकाई को सौपता है। यदि आदर्श लोकतंत्र हो तब समाज और सरकार लगभग बराबर होकर तथा संतुलन बनाकर न्याय देते है। यदि भारत सरीखा विकृत लोकतंत्र हो तो सरकार ही न्याय देने की एकमात्र इकाइ है, जिसमे विधायिका न्याय को परिभाषित करती है न्यायपालिका उक्त परिभाषा को आधार बनाकर न्याय अन्याय का परीक्षण करती है तथा कार्यपालिका तदनुसार न्याय प्रदान करती है। यदि तानाशाही या राजतंत्र हो तब तो तीनो ही काम राजा को इच्छानुसार होते हैं,किन्तु लोकतंत्र में उपरोक्त तीनों इकाइयों का समन्वित स्वरुप ही राजा की भूमिका में होता है। न्याय हमेशा ही मूर्त इकाईयो को मिलता है सम्पूर्ण समाज को नहीं क्योकि समाज तो स्वयं ही एक अमूर्त इकाई है।

आदर्श लोकतंत्र में विधायिका समाज का प्रतिनिधित्व करती है क्योकि समाज कोई मूर्त इकाई न होने से विधायिका के रूप मे मूर्त ढांचा बनाया जाता है । विधायिका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से कायपालिका मे हस्तक्षेप नही कर सकती।भारतीय शासन प्रणाली मे विधायिका अपने अन्दर से ही मंत्रिमंडल बनाकर उसे कार्यपालिका मे असीमित हस्तक्षेप के दायित्व देती है। यही कारण ह कि विधायिका कार्यपालिका के उपर हावी हो गई है। यह विकृति बहुत हानिकर है। इसके दो ही समाधान संभव है। या तो विधायिका और कार्यपालिका को बिल्कुल अलग अलग कर दें अथवा विधायिका के उपर लोकसंसद बनाकर उसके असीमित अधिकारों को सीमित कर दें

आपने प्राकृतिक न्याय तथा भौतिक न्याय लिखा है। मेरे लेख मे प्राकृतिक न्याय को मौलिक अधिकार तथा भैतिक न्याय का अर्थ प्रत्येक इकाइ की इकागत स्वतंत्रता की सुरक्षा का दायित्व है।

मैं इस कथन से सहमत हूॅ कि संविधान का बावनवां संशोधन एक प्रकार से कलंक है। राजीव गांधी ने अपने कार्यकाल में जो भी अच्छे काम किये वे सब इस संशोधन द्वारा घुल जाता है।यह संविधान संशोधन संविधान के मूल स्वरूप का उल्लघंन है। भारतीय संविधान प्रत्येक सांसद को मूल रूप से जनप्रतिनिधि मानकर उसे संसद में अपनी बात रखने की स्वतंत्रता देता है तो बावनवां संविधान संसोधन इससे ठीक उल्टा सांसद को दल प्रतिनिधि के रूप मे संसद में उसकी स्वतंत्रता के विरूद्ध ब्हिय जारी करता है। यह संसोधन हटना चाहिए।

(6) विनोद कुमार सर्वोदय नयागंज गाजियाबाद

भारत वासियों को अपना मूल हिन्दू धर्म अपनाने पर राजनैतिक चालबाजो व मिडियॉ द्वारा इतना अधिक हाय तौबा मचाने का क्या औचित्य है? इससे पहले कि वे ऐसा करते किसी ने दुनिया के इतिहास को पलट कर देखने की कोशिश क्यो नहीं की जिससे पता चलता है कि भारत के साथ –साथ पूरी दुनिया में मुसलमान व ईसाई अपनी अपनी जनसंख्या बढाने के लिए किस प्रकार के षडयंत्र रचते है। इनमे सेवा का आडम्बर, लोभ – लालच, छल, कपट व भोली भाली हिन्दु लडकियों को प्रेम जाल मे फंसा कर धर्मातरण करना प्रमुख रूप से प्रचलित है। प्रायः पादरियों व मौलवियो द्वारा हिन्दु देवी देवताओ के प्रति अभद्र प्रचार भी धर्मातरण में सहायक हो गया है। वास्तव में इनका फैलाव व विस्तार का मुख्य आधार हो धर्मातरण है, इसलिये यह प्रक्रिया पूरी दुनिया मे जारी है। हमारे देश में सन् 711 में मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के बाद से ही बलात् धर्मातरण का न रूकने वाला सिलसिला जारी है। यह किसी से छिपा नही है कि मुगलकाल मे लाखो हिन्दुओं का बलात् धर्मातरण किया गया व न स्वीकार करने वालों को मारा गया था। ब्रिटिश शासन में भी ईसाई मिशनरियों ने भी बडे पैमाने पर हिन्दु आदिवासियों व जनजातियों को धर्मान्तरित करके ईसाई बनाया था जो अभी भी चल रहा है।

स्वतंत्रता के बाद भी केन्द्र की कुछ पिछली सरकारो से धर्मातरण को अप्रत्यक्ष समर्थन मिलता रहा है। अल्पसंख्यक आरक्षण व उनको बडी–बडी योजनाओं द्वारा हिन्दुओ से अधिक लाभ पहुँचाना तथा मुस्लिमो मे बहुविवाह भी धर्मातरण को प्रोत्साहन ही देता है। इसक अतिरिक्त बहुत बडे स्तर पर मुस्लिम व ईसाई देशो से गरीब हिन्दुओं को धर्मातरित करने के लिए प्रति वर्ष लगभग 15से 20 हजार करोड रूपया विभिन्न माध्यमो से आ रहा है।

इस प्रकार धर्मान्तरण व घुसपैठ रूपी विष से हमारे देश मे ईसाईयो व मुसलमानों की जनसंख्या बढोतरी तथा हिन्दु जनसंख्या अनुपात घटने से प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। इन सबकी उदारता के नाम पर अवहेलना करना आत्मघाती बनता गया ।आज अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए लोहे से लोहा काटने के लिए घर वापसी की रणनीति राष्ट्र भक्तों ने अपनायी है तो अनेक राजनीतिज्ञ चालबाजो व बुद्धिजीवियो का सिहासन डोलने लगा है। आज धर्मातरण पर पूर्ण प्रतिबंध अत्यंत आवश्यक है। आत्मा व आस्थाओं का व्यापार नही किया जाना चाहिए । कुछ प्रदेशों छतीसगढ , मध्यप्रदेश, गुजरात व हिमाचल प्रदेश मे इसको रोकने का प्रावधान किया गया है। परन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना होगा कि घर वापसी अर्थात् अपने मूल धर्म मे पुनः आने पर किसी प्रकार की कोई कानूनी आपति नहीं है और न ही यह धर्मातरण के दायरे में आते है। यह धर्म परिवर्तन नहीं है।

धर्मान्तरित हिन्दुओ का परावर्तन (घर वापसी) का अभियान समय समय पर चलता रहा है। जब भूतपूर्व हिन्दुओ और वर्तमान हिन्दुओ के पूर्वज एक है, आस्थायें व परम्परायें एक है, तथा इतिहास एक हो तो फिर इसमे गलत क्या है? बिना कारण आपति किसे और क्यों? समय के साथ इतिहास स्वयं को झुठला सकता है परन्तु डी0एन0ए0 विज्ञान तो झुठा नहीं। समय समय पर विभिन्न इतिहासकारो ने भी लिखा है कि धर्मान्तरित मुस्लिम व इसाई किसी विदेशी के वंशज नही बल्कि स्थानीय भूतपूर्व धर्मान्तरित हिन्दुओ के ही वंशज है। आज तक धर्मातरण के सदियों से चले आ रहे आत्मघाती षडयंत्र को पूरा देश चुपचाप सहता आ रहा है तो उस पर कोई उन्माद नहीं हुआ पर जब धर्मान्तरित हिन्दुओं की घर वापसी या धर्म परिवर्तन आरम्भ हुआ है तो चारो ओर कोहराम मचा हुआ है। वाह क्या विडम्बना है कि आप धर्मान्तरण करे तो ठीक है, हम घर वापसी करे तो भी गलत ।

क्या यह सही नही है कि आक्रांताआ द्वारा अपनी संस्कृति व धर्म को हमारे देश के कमजोरो व निर्बल वर्ग का बाहुबल व धनबल के अनुचित तरीको से धर्मपरिवर्तन करके अपने साम्राज्य को बढाने की मानसिकता ही "धर्मातरण" का कारण बनी ? यहॉ यह कहना भी गलत नही होगा कि धर्मातरण ही राष्ट्रान्तरण है।

हमारा इतिहास सन् 711से 1857 तक पठान व मुगलकालोन शासकों द्वारा भारत के मूल निवासियों का धर्मातरण करके मुसलमान व सन्1700से 1947 तक अंग्रेजो द्वारा ईसाई बनाने के अनेक क्रूरतम अत्याचारों से भरा पडा हैं। वास्तव मे पूरी दुनिया मे ईसाईयो व मुसलमानों के अस्तित्व व बढोतरी का आधार ही धर्मातरण है। इसमे उनको निरंतर सफलता मिलती चली गयी। आज दुनिया के अनेक राज्य व राष्ट्र इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। धर्मातरण को ठीक ठहराने के लिए यह कहना कि हजारो वर्षो से एक दूसरे धर्म को अपनाया जाता आ रहा है सरासर गलत है व समाज को भ्रमित करना है। जगदगुरू कहलाने वाले भारत के हिन्दु धर्म के हजारो वर्षो के इतिहास मे कभी भी इस प्रकार की अमानवीय व अत्याचारी घटना का उल्लेख नही मिलता।

स्वतंत्रता के बाद धर्म प्रचार व प्रसार की संवैधानिक छूट (अनुच्छेद25) से भी धर्मातरण की प्रक्रिया की पुष्टि हुई है। इसका ईसाई व मुसलमान दोनो ने अपनी –अपनी जनसंख्या बढाने के लिए भरपूर दुरूपयोग किया।तृष्टिकरण की राजनीति के कारण व संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को मिलने वाले अनेक लाभों व अधिकारों से लाभान्वित हाने के लिए भी धर्मातरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिल रहा है।जरा सोचो कि जब संविधान में किसी भी वस्तु का व्यापार करने की छूट मिली है तो क्या महिलाओं द्वारा अवैध हथियारों व नशीले पदार्थो का व्यापार भी उचित ठहराया जा सकता है? इसी प्रकार धर्म व आस्था कोई व्यापारिक वस्तु नहीं है जिसका सौदा किया जाय। यह मानव के जन्म से सीधे सीधे सम्बन्धित है। अतः लोभ–लालच व बल पूर्वक या तत्कालीन सेवा कार्यो द्वारा धर्मपरिवर्तन सरासर मानवता विरोधी आचरण है।

कुछ लोगो द्वारा हिन्दू धर्म की बुराईयों से बचने के लिए धर्मातरण को उचित माना जाता है परन्तु आज भी हिन्दुओं के धर्मातरण से बने इसाईयों व मुसलमानों में भो वही जाति आधारित बुराईयां व दमन कमोवेश जारी है।आज दुनिया के अधिकांश देशों में धर्मातरण अवैध है तो फिर भारत में भी इसपर प्रतिबन्ध लगाने में कैसा संकोच? क्या अल्पसंख्यकों की राजनीति इसमे बाधक तो नहीं और उसके ही दबाव मे "धर्मातरण विरोधी कानून" स्वीकार नहीं? धर्मातरण रूपी अप्राकृतिक व अमानवीय अत्याचार जो चारो ओर बडे पैमाने पर पूरी दुनिया में सदियो से चला आ रहा है तो उसपर कोइ विवाद नही फिर अपने पूर्वजों के मूल धर्म में वापिस आने के लिए किये जा रहे समाज सुधार के अभियान पर ढोगी धर्मनिरपेक्षता वादियों को इतनी अधिक आपत्ति क्यो?

प्रायः समाज के पीडित व दुर्बल वर्ग की विकट परिस्थितियों का लाभ उठाकर ही धर्मातरण अधिक किया गया है। जरा सोचो जो समाज अपने जीवनयापन की ही विषमताओं में घिरा हुआ है तो वह इसका विरोध क्यों व कैसे कर पाता?
हमारे देश में भी मुगलों व अंग्रजों के शासन काल में धर्मातरण का विरोध प्रायः नहीं हुआ ? परन्तु जिसने विरोध किया उसका सर कलम कर दिया। इतिहास गवाह है कि धर्मातरण के विरोध मे महान हिन्दु धर्म रक्षकों पर मुगलों की बर्बरता का इतना भयानक रूप न कभी देखा होगा न सुना होगा.....
भाई मतीदास को....लकडी के फट्टे पर बांध कर आरे से चीरा गया.।.....भाई सतीदास को....कढाई में गर्म –गर्म तेल में तब तक तला गया जब तक उनका शरीर कोयले के समान काला नहीं हो गया।...भाई दयालदास के..... शरीर पर रूई लपेट कर आग लगा दी गई. ।....गुरू तेगबहादुर का ..... "शीश" काटा गया.।....गुरू गोविन्दसिंह के.....दो बच्चों को जिन्दा दीवार मे चिनवाया गया।...वीर बालक हकीकत राय ...को अल्प आयु में ही जंजीरों से बॉध कर जल्लाद ने सर कलम किया.।....ऐसे अनेक बलिदानी इतिहास के गत में समाये हुए ह जिन्होंने धर्म की रक्षार्थ सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। यहॉ एक बात अवश्य समझनी होगी कि समाज में इस प्रकार दहशत बना कर भयभीत करके सामान्य जनमानस को धर्मातरित करने में सरलता हुई।आज हम अपने भूले भटके धर्मबंधुओं की सम्मानपूर्वक घर वापसी का जो कार्य कर रहे है वह समाज के उन ठेकेदारों व जिहादियों से अति उतम कार्य है जिसमे धर्मातरण के लिए मानसिक व शारीरिक उत्पीडन की पराकाष्ठा थी।

उत्तर – यह सत्य है कि हिन्दूओं को छोडकर अन्य सम्प्रदाय अपनी संख्या विस्तार के लिए उचित –अनुचित सब प्रकार के साधनों का उपयोग करते है। यह भी सच है कि भारत मे पिछली सभी सरकारों मे चाहे वे गुलामी काल की हो अथवा स्वाधोन भारत की, सबने किसी न किसी लालच मे ऐसे धर्म परिवर्तन को कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष सहयोग किया। कई सौ वर्षों की लम्बी गुलामी के बाद भी भारत मे हिन्दुत्व लगभग 80प्रतिशत की अबादी मे टिका हुआ है।इसका अर्थ है कि हिन्दुत्व मे ऐसी कोई अतिरिक्त विशेषता है, जो हिन्दुत्व को अन्य सम्प्रदायों की साम्प्रदायिकता से अलग करती है। यदि हिन्दू भी अन्य सम्प्रदायो की तरह संख्या बल की छोना झपटी मे लग गया तो हिन्दुत्व की वह विशेषता समाप्त हो जाएगी जो हिन्दुत्व को अन्य सम्प्रदायो से कुछ अलग सिद्ध करती है।गुलामी काल में विदेशियो ने जो भी अत्याचार किये उतने अतिरंजित नही है जितने आपने वर्णन किये है । किन्तु अत्याचार हुए यह बात विवाद रहित है। आज भी पाकिस्तान सरीखे इस्लामिक राष्ट्रों में इशनिंदा के नाम पर वैसे ही अत्याचार देखने को मिलते है। स्वतंत्रता के बाद भोमराव अम्बेडकर जी ने हिन्दुत्व के खिलाफ हिन्दू कोड बिल बनाकर जो षडयंत्र किया वह दूध मे जहर के समान था। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि हम अपनी सुरक्षा के नाम पर वैसा ही व्यवहार करे जो बदला लेने के समान हो । मेरे विचार से धर्म परिवर्तन कराने पर रोक लगनी चाहिए। मेरे विचार से समान नागरिक संहिता भी लागू होनी चाहिए । किन्तु आपकी इस बात से सहमत नहो हूँ कि अन्य सम्प्रदायों को इस छोना झपटी से बाहर कर दिया जाये तथा आप जैसे लोगों को विशेष छूट दे दी जाये जैसी गुलामी काल मे थी अथवा स्वतंत्रता के बाद भी वर्तमान शासन के पूर्व थी। आप सम्प्रदायिकता का विस्तार करना चाहते है। जो ठीक नही है । हिन्दुत्व मे ऐसे गुण अभी मौजुद है जो हिन्दुत्व को स्वतः बचने अथवा विस्तार करने में पर्याप्त है । यदि शासन की तिकडमो से हिन्दुत्व मुक्त हो जाये तो हिन्दुत्व को कोई चिंता नही है।
वर्तमान समय मे भारत के हिन्दुत्व की सुरक्षा की चिंता हमारी पहली प्राथमिकता नही है बल्कि पहली प्राथमिकता है कुछ जेहादी मुसलमानों से संपूर्ण विश्व की विश्वव्यवस्था पर मंडराता खतरा। ऐसे समय में पुरी दुनिया धीरे धीरे इनके खिलाफ एक जुट हो रही है। किन्त, भारत के जेहादी हिन्दू अभी भी धर्म परिवर्तन अथवा पाकिस्तान –पाकिस्तान की रट लगाकर भारत का ध्यान भटकाते रहते है।जब आग लगी हो तब सर्वाधिक प्राथमिकता आग बुझाने की है, वेद पढना नही । मेरे विचार से आप जैसे लोग भी जेहादी मुसलमानों से कम नही है।म चाहता हूँ कि वर्तमान समय मे इस्लामिक आंतकवाद द्वारा विश्व सभ्यता पर आये संकट को प्राथमिकता के आधार पर लेना चाहिए । यदि निपटना ही होगा तो पाकिस्तान से या भारत के साम्प्रदायिक तत्वो से बाद मे भी निपटा सकता है। नरेन्द्र मोदी को आये अभी कुछ ही महिने बीते है।किन्तु आप लोग उन्हे शांति से काम नही करने दे रहे है, यह अच्छी बात नही है।

(7)एम. एस. सिंगला, अजमेर राजस्थान, ज्ञानतत्व–50060

विगत में एक पाठक द्वारा मुनि, ऋषि आदि विशेषणों में अन्तर जानने की आकांक्षा के प्रति आपने अपनी अनभिज्ञता दर्शाई थी। अपना दायित्व मानकर अपनी जानकारी के अनुसार उनका स्पष्टोकरण भेजा गया था जिसे आपने प्रकाशित किया।इस बार अंक 306 में आपने जिन प्रश्नों के मुझसे उत्तर चाहे है, वह कुछ उचित नहीं लगा। उनके उत्तर अपनी–अपनी समझ के अनुसार भिन्न होकर विवाद को जन्म दे सकते हैं। अस्तु ,इस बिन्दु को ध्यान में रखकर उत्तर देने का प्रयास प्रस्तुत है जो कुछ विस्तार लिये हैं।

प्रश्नः–(1)ज्ञान–शिक्षा एक हैं या अलग–अलग?

उत्तरः–ज्ञान–शिक्षा अलग–अलग होते हुए भी एक हैं। शिक्षा ज्ञान को सम्प्रेषित करने का मार्ग प्रशस्त करती है और उसे परिमार्जित करती है। उदाहरण मिट्टी में गन्ध तो रहती है पानी पड़ने से वह गन्ध आती है। अशिक्षित को अज्ञानी कहना उचित नहीं हो सकता। अशिक्षित गृहणियां सम्भवतः आज की शिक्षित गृहणियों को अपेक्षा बेहतर गृहस्थी चलाती हैं। निरक्षर ग्रामीण पढ़े–लिखे नगरवासियों से कमतर नहीं होते।

प्रश्नः–(2) इस प्रश्न में आपका दिया गया मत और उदाहरण दोंनो ही उत्तर है और वही शतप्रतिशत सही है।

प्रश्नः–(3)शिक्षित लोग अधिक शोषण करते है या अशिक्षित?

उत्तरः–इसका सही आकलन नहीं हो सकता।अतः सही उत्तर नहीं दिया जा सकता। तब भी जैसा देखने में आ रहा है कि लोकतंत्र में शिक्षित अधिक शोषण करते है। शोषण करने में अशिक्षित जहां चूकते है वहां उन्हे शिक्षित का सम्बल मिल जाता है। मुझे लगता है कि शिक्षा वकीली कुतर्क को जन्म देती है। देश में यदि वकील वर्ग पर किसी प्रकार का अंकुश लग जाय तो देश की दशा बहुत सुधर सकती है। किसी ने कितना सही कहा 'वकील वह कील है जो अंग्रेज भारत की छाती में गाड कर गया है।'देश के रेल मंत्री मिश्र की हत्या का फैसला 36साल बाद आना क्या दर्शाता है?

इस विषय पर मैने अपने एक नेता मित्र को कभी पत्र लिखा था। हरियाणा में मेरे मित्र खेल मंत्री थे। किसी घोटाले को लेकर या कि सरकारों में होते घोटालो को लेकर मेरा कहना था कि घोटालेवाली शिक्षा से देश को क्या लाभ हो सकता है। उनका अपना राजनीतिपूर्ण उत्तर था जिसे उत्तर के लिए उत्तर कहा जा सकता था। अस्तु।

प्र04–यदि भारत के सब लोग ....!

उत्तर –यह एक यूटोपिया है। आज की शिक्षा अक्षर ज्ञान है,व्यावसायिक है, उसका स्वरूप बिगडा हुआ है। शुरू से ही अब स्कूलों में सूट–बूट–टाई पर अधिक ध्यान दिया जाता है। आज तक सरकारें यह तक तय नहीं कर पा रही हैं कि शिक्षा का स्वरूप क्या हो? राजनीति में यहां तक भेद उजागर हैं कि एक पक्ष कहता है नकल होने देनी चाहिए दूसरा दल कहता है नहीं होने देनी चाहिये, कोई और कहता है वैसे ही प्रमोट कर देना चाहिये।विभागों में कोटावाले लोगों के लिए मापदण्ड ताक पर उठाकर रख दिये गए हैं। इस प्रकार वस्तुतः शिक्षा का स्वरूप ही गर्भ में झिल्ली में ढके भ्रूण की तरह अस्पष्ट हो तब क्या कहा जा सकता है। अभी हाल में समाचार पढने को मिला कि श्रीमतो मेनका गांधी बच्चो को ऐसी डॉकुमेंटरी दिखाने का विचार कर रही हैं कि बच्चे यह जान सकें कि उनके साथ यौन अपराध किए जाने पर वे अपने तत्सम्बन्धी अंगो को जानें ताकि वे अपना कुछ बचाव कर सकें। यह कितना उपयुक्त हो सकता है। कुल मिलाकर जब तक इस देश में विदेशी नकल को महत्व दिया जाएगा, स्थितियॉ सुधर सकेंगी ,कहना कठिन है।

आपके द्वारा निर्दिष्ट समस्याओं या कि अपराधों पर नियन्त्रण तभी सम्भव है जब शिक्षा आत्मोन्नत करने वाली हो तथा कानून अपराध के प्रति कठोर हो। मानवाधिकार मानवता का पक्षधर बने । मानवता में दानवता को इसका लाभ न मिल पाए। यह भी कि आज की शिक्षा ने हमारा नैतिक पतन कराया है। आज की शिक्षा मात्र भौतिकवादी कर दी गई है। आज व्यक्ति का कोई विश्वास या मूल्य नही है। उसे अपने नाम पते के लिए कागजी प्रमाण –पत्र देना पडता है।कागज सही है व्यक्ति अविश्वसनीय । गलत प्रमाण देने वाले के प्रति क्या कारवाई की जाती है। शिक्षा और नियमों की दुहाई देकर आम आदमी के साथ–साथ न्याय का भी गला घोटा जा रहा है।

समीक्षा– मेरे विचार में ज्ञान और शिक्षा बिल्कुल अलग–अलग होते हैं। ज्ञान अपने व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित होता है जबकि शिक्षा दूसरों द्वारा प्राप्त होती है। महापुरुषों द्वारा दिया गया अनुभव भी तब तक शिक्षा है जब तक उस संबंध में व्यक्तिगत अनुभव न हो। जलती लालटेन को छ्ने से हाथ जलेगा यह अनुभव हमें परिवार के लोग या दूसरें लोग बताते है। यह तब तक शिक्षा है जब तक हम छू न लें। छूने के बाद वह शिक्षा हमारा ज्ञान बन जाती है।

ज्ञान हमारे चरित्र को प्रभावित करता है। शिक्षा हमारे चरित्र पर प्रभाव नहीं डालती बल्कि ज्ञान द्वारा बनाये गये हमारे आचरण की क्षमता का विकास करती है।यदि चोर प्रवृत्ति का व्यक्ति शिक्षित होगा तो ज्यादा सफाई से चोरी करेगा और यदि चोरी रोकने वाला शिक्षित होगा ता अधिक सतकता से चोर पकड़ेगा। शिक्षा कभी चरित्र का मापदण्ड नहीं होती।

ज्ञान हमें तीन जगह से प्राप्त होता है––(1)जन्म पूर्व के संस्कार जो हमें माता पिता से जन्म पूर्व मिलते हैं।(2)पारिवारिक वातावरण(3)सामाजिक परिवेष जिसमें राजनैतिक परिवेष भी शामिल है। माता पिता की दूषित सोच वर्तमान बच्चों पर प्रभाव डाल रही है। पारिवारिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया गया है। सामाजिक राजनैतिक परिवेष भी आप देख रहें हैं। ऐसी स्थिति में ज्ञान या तो घट रहा है या विपरीत दिशा में चरित्र निर्माण कर रहा है। ऐसे विपरीत ज्ञान वाले दूषित चरित्र को शिक्षा और ज्यादा बढ़ा रही है। आप कोई भी शिक्षा देंगे किन्तु वह शिक्षा न ज्ञान बन सकती है न ही चरित्र बना सकती है। जिन लोगों ने आज तक वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दोष दिया वे इसका विकल्प आज तक खड़ा नहीं कर सके। घर बैठे शिक्षा प्रणाली को दोष देना आसान है और विकल्प दना अब तक तो असम्भव। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूॅ कि परिवार व्यवस्था को सशक्त किये बिना शिक्षा विपरीत ही परिणाम देंगी। शिक्षा का महत्व है किन्तु परिवार सशक्तिकरण समाज सशक्तिकरण के पूर्व नहीं बल्कि उसके बाद।

आपने मेनका गॉधी की सोच पर प्रश्न उठाया। स्वतंत्रता के बाद अब तक तो किसी मेनका गॉधी ने यह प्रयोग नहीं किया था। फिर क्या कारण हैं कि लगातार चरित्र पतन हो रहा है। जो कुछ नया प्रयोग है वह गलत ही है ऐसा नहीं है। मैं मेनका जी के प्रयोग के पक्ष में नहीं किन्तु उसका घोर विरोधी भी नहीं । एक प्रयोग हैं अच्छे बुरे परिणाम इसे मेनका जी के ज्ञान में बदल देंगे।

इस तरह मैं किसी के भी इस कथन को बकवास मानता हूॅ कि शिक्षा के स्वरुप को बदल कर चरित्र पर प्रभाव डाला जा सकता है।

(8) शिवदत्त बाघा,बॉदा,उत्तरप्रदेश, ज्ञानतत्व–7880

प्रश्नः– आपके आन्दोलन के साथ जुड़ी चार मॉगों में से प्रति परिवार 2000रु दिये जाने की मॉग को मैंने बिल्कुल हल्के से लिया था या यह कहिए कि इसे भीड़ जुटाने के एक नुस्खे के रुप में भी परिभाषित किया था। किन्तु भारत के प्रख्यात अर्थशास्त्री (राष्ट्रवादी)डॉ0 भरत झुनझुनवाला का दैनिक जागरण अखबार में प्रकाशित लेख को पढ़कर मेरी धारणा को एक नया रुप मिला और अर्थशास्त्र पर आपके ज्ञान व पकड़ पर भरोसा दृढ़ हुआ। डॉ0 झुनझुनवाला वही कह रहें हैं जो आपने कहा है। दोनों के कथन में एकदम अद्वितीय साम्य है।

भरत झुनझुनवाला क लेख के अनुसार – चीन और भारत की नीति में गहरा अंतर है। चीन द्वारा निर्यातों को बढ़ावा देकर तथा आयातो को महंगा बनाकर घरेलू जनता के द्वारा विदेशी माल की खपत को कम किया जाता है। निर्यातों से अर्जित डॉलर का उपयोग अमेरिका पर वर्चस्व बनाने के लिए किया जा रहा है। अपनी जनता की खपत कम करके चीन अमेरिका पर अपना दबदबा बना रहा है। दुर्भाग्यवश भारत की नीति इसके विपरीत है। भारत विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक मात्रा में आकषित करके अर्जित किए गए डॉलर का उपयोग खपत में यानी खिलौने, सेब और तेल खरीदने में कर रहा है। विदेशी निवेश एक प्रकार का ऋण होता है। भारत सरकार निवेशक को सुनिश्चित करती है कि निवेशक अपनी सुविधानुसार अपनी फैक्ट्री अथवा शेयरों को बेचकर पूंजी को अपने देश वापस ले जा सकते है। भारत सरकार देश को गिरवी रखकर जनता को अमेरिकी सेब खिला रही है,जबकि चीनी सरकार अपनी जनता की इच्छाओं पर अंकुश लगाकर अमेरिकी अर्थव्यवस्था में अपनी पैठ स्थापित कर रही है। इस विलासिता परक नीति को नरेंन्द्र मोदी का संरक्षण प्राप्त है। अतः वे चीन से आग्रह कर रहें है कि भारत में निवेश बढ़ाए। डर है कि नरेंन्द्र मोदी का देश को सुपरपावर बनाने का सपना कहीं देश को सुपर ऋणी बनाने में तब्दील न हो जाए।

हमें अपना ढर्रा बदलना चाहिए। अपनी करेंसी रुपये का अवमूल्यन होने देना चाहिए।रुपया यदि 75 रुपयें प्रति डॉलर पर गिर जाएगा तो आयात स्वतः घटेंगे और निर्यात बढ़ेंगे। वर्तमान में विश्व बाजार में कोयले और तेल के दाम घट रहे है। इन गिरे हुए दामों का उपयोग जनता द्वारा खपत बढ़ाने के लिए नहीं करना चाहिए। सरकार की सोच केवल अल्पकालोन राजनीति परक न होकर देश के दीर्घकालोन हित पर केंन्द्रित होनी चाहिए। इन मालों पर भारी 'ऊर्जा' टैक्स लगाकर इनके मूल्य बढ़ाना चाहिए। जैसे चीन ने अपनी जनता को विश्वास में लिया है वैसे ही नरेंन्द्र मोदी को अपनी जनता को विश्वास में लेकर खपत कम करने का आह्वान करना चाहिए।इस टैक्स के कारण डीजल और बिजली के दाम चढ़ेंगे। तेल और कोयले क बढ़े दाम का छोटे किसान तथा गरीब मतदाता पर विपरीत प्रभाव न पड़े,इसके लिये ऊर्जा टैक्स का वितरण करना चाहिए। देश के हर परिवार के बैंक खाते में हर माह 1000 से 2000 रुपयें जमा करा देना चाहिए ताकि गरीब महंगे माल को पूर्ववत् खरीद सकें। ऐसा करने से मोदी की साख बढ़ेगी और उनकी लोकप्रियता में कोई कमी नही आयेगी। सरकार को ऊर्जा टैक्स से अर्जित रकम का उपयोग चीन के साथ साझा रणनीति बनाकर अमेरिकी ट्रेजरी बिल खरीदने के लिए करना चाहिए।

मोदी को चीन द्वारा आकर्षित किए जा रहे विदेशी निवेश से भ्रमित नहीं होना चाहिए। चीन द्वारा जितनी मात्रा में विदेशी निवेश लिया जाता है लगभग उतना विदेशी मुद्रा भंडार बनाया जाता है। जबकि भारत विदेशी निवेशकों से मिली रकम का उपयोग जनता की खपत बढ़ाने के लिए कर रहा है। अतएव भारत ऋण से दबता जा रहा है।भारत की अर्थव्यवस्था विदेशी निवेशकों के हाथ गिरवी रख दी गई है। पूर्व में कई बार ऐसा हुआ है कि विदेशी निवेशकों ने बिकवाली की है। फलस्वरुप हमारे शेयर बाजार और रुपया,दोंनो टूटे है। अतः मोदी को विदेशी निवेशकों के सम्मोहन से बाहर आना चाहिए। विदेशी निवेश के प्रस्तावां का तकनीकी और सामाजिक ऑडिट कराना चाहिए। उन्हीं प्रस्तावों पर अमल करना चाहिए जिनके माध्यम से देश को अग्रणी तकनीक मिले और जनता पर विपरीत प्रभाव न पडे।ऋणं कृत्वा घृत पोवत से देश सुपरपावर नहीं बनेगा। अतः विदेशी निवेश रुपी ऋण और सस्ते तेल की बढती खपत से बचना चाहिए। सुपरपावर बनने के लिए विश्व अर्थव्यवस्था पर अपना वर्चस्व बनाने की रणनीति बनानी चाहिए।

उत्तरः–श्री भरत झुनझुनवाला मेरे निकट के मित्र हैं। उन्हांने समय –समय पर मुझे आर्थिक अनुभव दिये हैं। मैं आश्वस्त हूॅ कि यदि कृत्रिम ऊर्जा के मूल्य ढ़ाई गुना कर दिये जाये तो भारत को विदेशों से कोई तेल कभी आयात करना ही नहीं पड़ेगा। ऐसा होना यद्यपि प्रथम दृष्टि में यूटोपिया लगता है किन्तु मेरे विचार में संभव है। ऐसा होते ही प्रतिवर्ष पच्चीस प्रतिशत डीजल बिजली पेट्रोल गैस की खपत कम हो जायेगी। प्रतिवर्ष पंद्रह बीस प्रतिशत बिजली का उत्पादन बढ़कर डीजल पेट्रोल की खपत कम कर देगा। प्रतिवर्ष सौर ऊर्जा तथा गोबर गैस,भी कुछ डीजल पेट्रोल बचायेंगे। बगरंडा का उत्पादन भी इतना बढ़ेगा कि हमारी डीजल पेट्रोल की आवश्यकता कुछ हद तक पूरी कर देगा। कुल मिलाकर प्रतिवर्ष दस से पंद्रह प्रतिशत तक डीजल पेट्रोल गैस आदि का आयात घटकर पॉच छः वर्ष में शून्य हो जायगा। इससे हम खाडी देशों के राजनैतिक दबाव से भी मुक्त हो जायेंगे। इससे पर्यावरण पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इसके साथ ही हम इस ऊर्जा टैक्स की रकम को भारत की आधी निचली आबादी को 2000रु प्रति परिवार नही बल्कि प्रति व्यक्ति प्रतिमाह दे सकते है।

भरत जी ने चीन की अर्थ व्यवस्था की तुलना की। मैं जानकारी के अभाव में यह समीक्षा नहीं कर सकता। किन्तु मैं समझता हूॅ कि भारत और चीन की सम्पूर्ण मानवीय व्यवस्था में एक मौलिक फर्क है।चीन में मनुष्य एक राष्टोय सम्पत्ति माना जाता है और श्रम राष्टोय संसाधन। वहां जिस प्रकार सस्ते श्रम के पक्ष में अनेक तर्क गढे जाते हैं वह चीन को ही मुबारक हो। भारत मे मनुष्य के लिये राष्ट एक सम्पति है और न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति एक संसाधन।भारत मेंकिसी घोषित सीमा रेखा से नीचे का जीवन यापन एक कलंक माना जाता है और चीन मे सस्ता माल विदेशो को निर्यात करना एक उपलब्धि । चीन प्री दुनिया में एक सशक्त देश सिध्द हाने के बाद भी अन्त में अपनी नातियॉ बदलने के लिये मजबूर हुआ। आज भी शक्ति के मामले में भारत से चीन मजबूत है। उसकी आर्थिक स्थिति भी भारत की अपेक्षा अच्छी है।किन्तु मानवीय पक्ष की गणना में भारत की तुलना में चीन कहीं नहीं है। भारत गर्व के साथ कह सकता है कि विश्व मानव समाज के समक्ष हमारा कुछ भी गोपनीय नहीं है। चीन ऐसी घोषणा करने की स्थिति में नहीं है।